International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 22-09-2024, Accepted: 23-10-2024, Published: 07-11-2024
Volume 10, Issue 4, 2024, Page No. 28-30

हिंदी साहित्य एवं सिनेमा में वंचित एवं शोषित समाज ('गोदान' के विशेष संदर्भ में)

प्राजक्ता शिवाजी कुरळे
हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, महाराष्ट्र, भारत

सारांश
सिनेमा जगत के लिए सन् 1913 बड़ा ही लाभदायक साबित हुआ। सन् 1913 में दादासाहेब फालके जी ने अपना प्रथम सिनेमा 'राजा हरिश्चंद्र'। यहाँ से सिनेमा सृष्टि के विकास की यात्रा आरंभ हो गई। समय के चलते इसमें अनेक बदलाव होने लगे, जिससे सिनेमा और साहित्य दोनों का नाता एकदूसरे के साथ अधिक घनिष्ठ बनता गया। साहित्य से ही सामाजिक समस्याओं का चित्रण और सामाजिक जागृत सिनेमा के माध्यम से होने लगी। यही कारण है कि साहित्य के बिना सिनेमा जड़े मजबूत नहीं बन सकती। जिसका वास्तव प्रेमचंद के गोदान से ज्ञात होता है।

मूल शब्दः साहित्य, सिनेमा, किसान, समस्या, ज्वलंत, भारतीय, चलचित्र, समाजप्रबोधन, समजकल्याण, तब्दील

सामाजिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले साहित्य और समाज दोनों का एकदूसरे के साथ घनिष्ठ संबंध है। साहित्य की निर्मिती समाज से होती है और साहित्य के बिना समाज की महत्ता स्पष्ट नहीं होती। साहित्य से ही स्थान, वातावरण, परिवेश, लोकजीवन की पद्धति आदि बातों का प्रतिबिंब पाठक के सामने आता है। यही बात है कि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। ठीक ऐसे ही साहित्य और सिनेमा का रिश्ता गहरा है। जैसे समाज से साहित्य की निर्मिती होती है, वैसे ही साहित्य से सिनेमा की निर्मिती होती है। सिनेमा जिसे चलचित्र कहा जाता है, जो कला के विविध रूपों के साथ सजीव और मार्मिक एवं सशक्त अभिव्यक्ति करता है। साहित्य और सिनेमा के अंतःसंबंध को लेकर डॉ. सुधेश 'सिनेमा और साहित्य' इस किताब में अपना अभिमत देते हुए लिखते हैं– "सिनेमा से साहित्य का संबंध उतना पुराना है जितना स्वयं सिनेमा पुराना है। सिनेमा वैज्ञानिक युग की देन है और वैज्ञानिक उन्नति विश्व में औद्योगीकरण के क्रम में शुरू हुई।"[1] यहाँ स्पष्ट होता है कि साहित्य और सिनेमा दोनों एकदूसरे के बिना अधूरे है। सामाजिक चुनौतियों से भरी समस्याओं का ज्वलंत चित्रण करने का काम साहित्य करता है। लेकिन भारत में आज भी साक्षरता का प्रमाण सौ प्रतिशत नहीं है। अनेक लोग आज भी अनपढ़ हैं। जिसके कारण साहित्य को समझना तो दूर वह उसे पढ़ भी नहीं सकते। लेकिन ऐसे समय पर सिनेमा ही एक ऐसा माध्यम है, जिसकी सहायता से अनपढ़ लोगों तक भी हम साहित्य को और साहित्यिक विचारों को पचा सकते हैं। इस बात को लेकर हरीश कुमार लिखते हैं– "एक आम व्यक्ति सिनेमा में सुनता ही नहीं बल्कि देखता हुआ विभिन्न बिंब–प्रतीक ग्रहण करता है और ये विविध पहलू पढ़ने की अपेक्षा चित्रों के माध्यम से अधिक आत्मसात किए जा सकते हैं।"[2] यहाँ स्पष्ट होता है कि अनेक बातें या साहित्यिक विचार जो पाठक आत्मसात नहीं कर सकता वह सिनेमा के माध्यम से लेखक की भावनाओं के साथ उसके विचारों को भी आसानी से समझ सकता है। साहित्य और सिनेमा दोनों भी सामाजिक घटकों के अनुसार ही आगे बढ़ने का काम कर रहे हैं। सामाजिक नीतियाँ, रुढ़ि–परंपरा, सामाजिक उतार–चढ़ाव आदि सभी का चित्रण भारतीय साहित्य एवं सिनेमा करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि दोनों में समाविष्ट विषय प्रामाणिकता और विश्वसनीयता से भरे हैं। साहित्य और सिनेमा का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन सिर्फ मनोरंजन करना इतना ही नहीं हैं; तो मनोरंजन के साथ समाजप्रबोधन करना, समाजकल्याण, चेतना जागृति और वंचितों को दुनिया के सामने लाना आदि है। भारतीय सिनेमा को लेकर डॉ. अलका आनंद लिखती है– "भारतीय सिनेमा की सबसे बड़ी विशेषता जीवन में व्याप्त हर तरह की संवेदनाओं को दर्शाना रहा है। भारतीय सिनेमा और उसके सामाजिक सरोकारों पर चर्चा करते समय यह भी ध्यान देने की जरूरत है कि आखिर भारतीय सिनेमा ने जहाँ से प्रभाव ग्रहण किया उसके बीज तत्व कहाँ थे?"[3] यहाँ स्पष्ट होता है कि भारतीय सिनेमा सिर्फ चित्र दिखाने का काम नहीं करता बल्कि वह संवेदनाओं को भी जागृत करता है। संवेदना, जो मानवीय ह्रदय को आसानी से छु लेती हैं। जिसके बीज दादासाहेब फाळके ने बोए। उन्होंने सन् 1913 में 'सत्य हरिश्चंद्र' नामक चित्रफ़ित से सिनेमा की शुरुआत की। आगे उन्होंने मोहिनी भस्मासुर, लंका दहन, कृष्ण जन्म, कालिया मर्दन जैसे चलचित्रों की निर्मिति की।

सिनेमा और साहित्य दोनों एकदूसरे पर निर्भर तो है पर दोनों में अनेक भेद दिखाई देते हैं। साहित्य समाज से निर्माण होता है और सामाजिक घटकों का, वातावरण का, मानवी संस्कृति का यथायोग्य चित्रण करता है। परंतु इन बातों का चित्रण करते हुए कभी अपने तत्वों के साथ समझौता नहीं करता। परंतु सिनेमा इन बातों की ओर ज्यादा ध्यान न देते हुए मूल कृति में काट–छाटकर पटकथा बनाता है। सिनेजगत हमेशा साहित्यकार को अपने लेखन को लेकर अनेक बंधनों में बांधने की कोशिश करता है, जिसमें वे कभी कामयाब होते है तो कभी साहित्यकार खुद दो कदम पीछे आ जाता है। प्रेमचंद भी अपने नसीब को आजमाना चाहते थे। अपनी आर्थिक विवंचना को दूर करने के विचार से प्रेमचंद फिल्म बनाने मुंबई आए। सन् 1934 में "द मिल मजदूरष इस फिल्म के माध्यम से मजदूर समस्या, मजदूरों पर होनेवाले अत्याचार, भेदभाव, मालिकों का मजदूरों पर वर्चस्व आदि बातों का यथार्थ चित्रण किया। यही कारण था कि प्रेमचंद को अगली फिल्म का लेखन करते समय फेरबदल करना पड़ा जो प्रेमचंद को मंजूर न था। उन्हें अपनी लेखनी के साथ अद्‌भुत प्रेम था और उसी के साथ समझौता करना उन्हें मंजूर नही था। इस समझौते के कारण प्रेमचंद का मोहभंग हो गया और वह मुंबई से इलाहाबाद वापस आ गए। उनकी मृत्यु के पश्चात उनके उपन्यास और कहानियों पर अनेक फिल्मे बनाई गई। जैसे रंगभूमि उपन्यास पर आधारित सिनेमा– दो बीघा जमीन, वकील, सेवासदन उपन्यास पर आधारित– सेवासदन आदि चलचित्र प्रेमचंद के साहित्य पर आधारित बनाए गए है परंतु इसमें प्रेमचंद का सहभाग नहीं था।

साहित्य सिनेमा की जननी है। कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता, लंबी कविता, महाकाव्य आदि का आधार लेकर ही सिनेमा बनाया जाता है। जो उपन्यास को एक रंग, रूप में पाठकों के सामने रखता हैं। लेकिन उसका कथानक नहीं बदलता। ऐसा ही एक प्रेमचंद का उपन्यास है 'गोदान'। जिसपर सिनेमा बनाया जा चुका है।

गोदान उपन्यास में वंचित और शोषित समाज

'गोदान' प्रेमचंद का सन् 1936 में प्रकाशित किसान जीवन पर आधारित उपन्यास है। जिसका कथानक होरी नामक किसान के इर्द–गिर्द घूमता है। होरी एक मेहनती और ईमानदार किसान है, जो अपने परिवार और भाइयों की गृहस्थी के लिए जीतोड़ मेहनत करता है। लेकिन फिर भी परिवार में आर्थिक अभाव के कारण तंगी निर्माण हो जाती है। होरी बेटे को दूध पिलाने की लालसा में गाय खरीद लाता है मगर उसका सगा भाई ही गाय की हत्या करता है। जो होरी जीवनभर गाय के सपने अपने मन में दबाए रखता है उसी होरी की मृत्यु पर पंडित उसकी पत्नी को आत्मशांति के लिए गोदान का उपाय बताता है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से प्रेमचंद ने शोषित किसानों का चित्रण किया है। होरी जिसे बार–बार मालिकों की खुशामद करने के लिए जाना पड़ता है। ऐसा नहीं कि होरी को नजर–नजराना से छूट मिलती है। बल्कि यह सब भरने के बावजूद होरी को मालिकों की खुशामद करनी पड़ती है। जब होरी का बेटा गोबर इस बात के लिए विरोध दर्शाने की कोशिश करता है तब होरी कहता है– "सलामी करने न जाएँ, तो रहें कहाँ? भगवान ने जब गुलाम बना दिया है, तो अपना क्या बस है? यह इसी सलामी की बरकत है, कि द्वार पर मड़ैया डाल ली और किसी ने कुछ नहीं कहा।"[4] यहाँ स्पष्ट होता है कि आम किसानों को अपने जीवन में आगे बढ़ने के लिए अपने मालिक, जमींदार और साहूकारों की गुलामी करनी पड़ती है। गोबर के क्रांतिकारी विचार होरी को डरावने लगते हैं। इन विचारों के कारण उमटने वाले पडसादों की चिंता होरी को है पर गोबर के सामने होरी टिक नहीं पाता– "होरी ने हारकर कहा– अब तुम्हारे मुँह कौन लगे भाई, तुम तो भगवान की लीला में भी टाँग अड़ाते हो।"[5] यहाँ स्पष्ट होता है कि गोबर एक किसान का बेटा है, उम्र से अभी छोटा है पर उसे इतनी समझ है कि भगवान के नाम पर किसानों को कौन और कितना लुटता है। जैसे धनवान तो बात–बात पर किसानों पर सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक अत्याचार करने पर तुले होते हैं। भोला होरी के साथ बातचीत करते हुए कहता है– "कौन कहता है कि हम–तुम आदमी हैं। हममें आदमियत कहाँ? आदमी वह है, जिसके पास धन है, अख़्तियार है, इलम है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं।"[6] यहाँ स्पष्ट होता है कि बड़े लोगों के मन में गरीब या सामान्य वर्ग के प्रति कौन–सी भावनाएँ हैं। वह गरीबों को बैल के समान मानते है जिससे दिनभर मेहनत करवाई जाती है और रात को मुट्ठीभर भूसा दिया जाता है।

होरी की गाय मरने पर इसकी जाँच–पड़ताल शुरू हो जाती है। पुलिस हीरा के घर की तलाशी लेना चाहती है लेकिन भाइयों के घर की तलाशी मतलब होरी की इज्जत। होरी अपनी इज्जत को मिट्टी में मिलाना नहीं चाहता था। अपनी इज्जत को बचाने के चक्कर में होरी को दलालों का सामना करना पड़ता है। खुद दरोगाजी कहते हैं– "अच्छा जाओ, तीस रुपए दिलवा दो, बीस रुपए हमारे, दस रुपए तुम्हारे। चार मुखिया हैं, इसका ख्याल कीजिए।"[7] यहाँ स्पष्ट होता है कि होरी जैसे किसानों को जीवन में कौन–कौन–सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। खुद की इज्जत भी दूसरों से खरीदनी पड़ती है। होरी के साथ–साथ उपन्यास में उसकी पत्नी और बच्चों का भी शोषण होता दिखाई देता है। धनिया हमेशा अपने बच्चों की खुशियों के लिए तरसती नजर आती है। बेटे को दूध मिले इसलिए गाय पालने की आशा मन में लगाए रहती है जो कभी पूरी नहीं होती। ऊपर से पति की मृत्यु पर उससे गोदान की माँग की जाती है। जो औरत जीवनभर एक गाय के लिए, बच्चों को दूध मिले इसलिए तरसती रही उसी के पास मुक्ति के लिए गाय की माँग होती है, क्या यही गरीब किसान को मिलनेवाला न्याय है। अगर यही चलता रहा तो कोई किसान परिवार मुक्ति की आशा नहीं रखेगा। उपन्यास में जिस प्रकार होरी और धनिया को शोषण का सामना करना पड़ता है ठीक वैसे ही उपन्यास के अन्य पात्र गोबर, सोना, रूपा, झुनिया आदि अनेक पात्रों को भी शोषण का सामना करना पड़ता है।

गोदान सिनेमा और उपन्यास : वंचित एवं शोषित का तुलनात्मक विवेचन

'गोदान' मुंशी प्रेमचंद द्वारा लिखित उपन्यास है जिसपर प्रथम सिनेमा सन् 1963 में बनाया है। जिसमें तत्कालीन भारतीय किसान जीवन को दर्शाने का प्रयास किया गया, जो जीवनभर एक वक्त की रोटी के लिए तरसता रहा। मन में गौ पालन की लालसा लगाए रहता जो कभी पूरी नही होती। अंत में उसे गोदान की सलाह दी जाती है। गो यानि गाय और दान का मतलब है कि बिना किसी मूल्य के देना = गोदान। प्रस्तुत सिनेमा से किसान–जीवन की संवेदनाओं का चित्रण होता है। किसी साहित्यिक कृति की ज़िम्मेदारी लेखक पर होती है वैसे ही साहित्यिक कृति को फिल्म में रूपांतरित करने की ज़िम्मेदारी निर्देशक पर होती है। साहित्य और सिनेमा पर बात करते समय प्रो. रमा लिखती है– "साहित्य एक ऐसी जमीन है जहाँ सिनेमा बार–बार लौटता है और अपनी पूरी चेतना के साथ लौटता है। सिनेमा के बनने की प्रक्रिया ही लेखन से आरंभ होती है। समाज में जो कुछ घट रहा है पहले साहित्य उसे कलमबद्ध करता है फिर सिनेमा के माध्यम से उसे प्रस्तुत किया जाता है।"[8] यहाँ स्पष्ट होता है सिनेमा के माध्यम से समाज का यथार्थ चित्रण हमारे सामने आता है परंतु उसकी शुरुवात साहित्य से ही होती है। यही बात प्रेमचंद के गोदान में दिखाई देती है। प्रेमचंद ने जिस गोदान उपन्यास का यथार्थ लेखन किया उसी गोदान उपन्यास का त्रिलोक जेटली ने फिल्म में रूपांतरण कर किसान जीवन को सजीव और प्रासंगिक रूप देने का कार्य किया। प्रस्तुत सिनेमा में किसान जीवन के साथ शहरी जीवन, धार्मिक कर्मकांड, सामाजिक विषमता, आर्थिक विषमता, ग्रामीण जीवन पद्धति आदि का यथार्थ चित्रण किया है। जिसके कारण होरी और धनिया का संघर्ष से भरा जीवन सामने आता है। यहाँ प्रो. रमा का कहना है– "समाज की धड़कनें सिनेमा में साफ सुनी जा सकती हैं। सिनेमा समाज की गतिविधियों को व्यक्त करने में सबसे समर्थ माध्यम है। वह यहाँ साहित्य से अधिक प्रभावी माध्यम इसलिए साबित हो जाता है क्योंकि साहित्य किसी घटना का मात्र वर्णन कर सकता है परंतु सिनेमा उसे सचित्र दिखा भी सकता है।"[9] प्रस्तुत फिल्म मे होरी की भूमिका राज कुमार और धनिया की भूमिका कामिनी कौशल ने निभाई है।

होरी और धनिया का जो संघर्ष भरा जीवन उपन्यास में दिखाई देता है, वही निर्देशक ने सिनेमा में भी दिखाया है। किसी साहित्यिक कृति का सिनेमा में रूपांतरण करते समय कभी कुछ मूल बातों को काटना पड़ता है तो कभी कुछ निर्देशक की ओर से जोड़ा भी जाता है। साहित्य को सिनेमा में तब्दील करते समय सिनेमा में जीवंतता लाने के लिए पटकथा में आवश्यक परिवर्तन किया जाता है, जिसकारण साहित्य के मूल तत्त्व सिनेमा में नहीं आ पाते और अगर आते भी हैं तो वह बहुत कम मात्रा में दिखाई देते हैं। यही भेद साहित्य और सिनेमा में अलगाव दर्शाता है। यही बाते हमें गोदान फिल्म में भी दिखाई देती है। साहित्यिक कृ ति के अंतर्गत लेखक जितनी मात्रा में किसान जीवन के मूल तक गए है वहाँ तक निर्देशक ने पहुँचने की कोशिश की है।

परंतु कुछ मात्रा में या फिर कल्पनात्मकता के कारण निर्देशक वहाँ तक नहीं पहुँच पाया है। उपन्यास में जगह–जगह सोना और रूपा के मनोरंजक किस्से पढ़ने को मिलते हैं। जिसका चित्रण करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं– "रूपा ने बाप की गरदन में हाथ डालकर ढिठाई से कहा– न उतरेंगे जाओ। काका, बहन हमको रोज चिढ़ाती है कि तू रूपा है, मैं सोना हूँ। मेरा नाम कुछ और रख दो।"[10] यहाँ स्पष्ट होता है कि सोना और रूपा दोनों में बात–बात पर मनोरंजनात्मक विवाद होते रहते है। जो सिनेमा में न के बराबर है। अगर सोना और रूपा का चित्रण सिनेमा में होता तो किसान जीवन की समस्याओं में दर्शक को ठंडी हवा का झोंका मिलने बराबर होता। सोना और रूपा दोनों को बचपन में ही अनेक समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। ओढ़ने के लिए कभी अच्छा कपड़ा भी नसीब नहीं होता। होरी की गरीबी के कारण रूपा अनमेल विवाह का शिकार बनती है। यहाँ रूपा का मानसिक शोषण होता हुआ दिखाई देता है। एक कम उम्र की लड़की जो अभी नादान है, जिसे शादी का मतलब नए कपड़े और गहने पहनने को मिलना इतना ही पता है वह लड़की एक बूढ़े आदमी के साथ अपने जीवन के सपने कहा तक देख सकती है। जो पहले से ही रूपा से भी अधिक उम्र के बच्चों का बाप है वह रूपा को पत्नी के रूप सँभाल और उसकी जरूरतों को पूरा कर सकेगा? जिसकी उम्र होरी से भी अधिक है। सोचने की बात है दुनिया के अन्नदाता को चंद पैसों के कारण, दहेज प्रथा के कारण अपनी फूल जैसी बेटी को एक अधेड़ उम्र के आदमी को सौपना पड़ता है। यही भारतीय किसान का यथार्थ जीवन है। जिसका वास्तव सिनेमा में दिखाया है।

प्रेमचंद द्वारा लिखित गोदान उपन्यास और त्रिलोक जेटली द्वारा निर्देशित सिनेमा को देखने से भारतीय किसान जीवन, किसान की मजबूरी, उसकी मजबूरी का फायदा उठाते साहूकार और ठाकुरों की नीति आदि बातें स्पष्ट होती हैं।

निष्कर्ष

प्रेमचंद द्वारा लिखित 'गोदान' उपन्यास और उसपर आधारित सिनेमा के अध्ययन के पश्चात निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि 'गोदान' उपन्यास और सिनेमा दोनों का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है, भारतीय किसान की दयनीयता और सामंतशाही का यथार्थ चित्रण करना। चाहे कितनी भी समस्याएँ क्यों न आए पर ना तो प्रेमचंद का किसान हार मानता है और ना ही त्रिलोक जेटली के सिनेमा का नायक (किसान) हार मानता है। दोनों भी अपनी अंतिम सास तक परिस्थिति से लड़ते हैं। लेकिन उपन्यास और सिनेमा की बात करें तो दोनों में कम अधिक मात्रा में तफ़ावत दिखाई देती है। सिनेमा की निर्मिति तो साहित्य से होती है परंतु जीवंतता लाने हेतु सिनेमा के निर्माता उपन्यास में अपनी ओर से बदलाव करते हैं, जो जरूरी होता है। उपन्यास को पढ़कर भी हम होरी को जहाँ तक समझ नहीं पाते वही सिर्फ सिनेमा को देखने से हम होरी के साथ उसकी नारी और उसके परिवार को आनेवाली समस्याओं को भी समझ सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. हरीश कुमार, सिनेमा और साहित्य, पृष्ठ अभिमत से, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 1998 प्रथम सं
2. वही, पृष्ठ 3
3. सं राकेश कुमार, भाषा, जुलाई–अगस्त 2020, पृष्ट 49
4. प्रेमचंद, गोदान, पृष्ठ 15, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, संस्करण,1988
5. वही, पृष्ठ 17
6. वही, पृष्ठ 20
7. वही, पृष्ठ 97
8. प्रो. रमा, हिंदी सिनेमा में साहित्यिक विमर्श, पृष्ठ – भूमिका से, हंस प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2022
9. वही, पृष्ठ 44
10. वही पृष्ट 21